मेडिकल की पढ़ाई के नाम पर छात्रों की जेब पर डकैती

हरियाणा सरकार ने 6 नवम्बर 2020 को एक आदेश जारी कर राज्य के सभी मेडिकल कॉलेजों में भारी फ़ीस वृद्धि कर दी है। इसके अलावा 40 लाख रुपये का बॉन्ड भी छात्रों को देना होगा। हरियाणा सरकार के मेडिकल शिक्षा व रिसर्च विभाग द्वारा जारी इस आदेश के अनुसार एमबीबीएस व पीजी (यानी एमडी व एमएस) के कोर्सों की फ़ीस बढा दी गयी है। एमबीबीएस की फीस इसी सत्र से बढा दी गयी है जबकि पीजी की बढी हुई फ़ीस 2021-22 से लागू होगी।

इस आदेश के अनुसार एसबीबीएस की पुरानी फ़ीस 53,000 की जगह अब दस लाख कर दी गई है। एनआरआई यानी विदेशी कोटे से भर्ती छात्रों की फ़ीस में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है जो पहले ही बहुत ज्यादा है। उनकी फ़ीस पूरी डिग्री कोर्स के लिये 125000 यूएस डॉलर यानी तकरीबन एक करोड़ रुपये है। यह फ़ीस वृद्धि हिन्दू-मुस्लिम, दलित-सवर्ण सभी वर्गों पर लागू होगी। यह जानकर उन लोगों को खासी निराशा होगी जो भाजपा को हिन्दू हितैषी पार्टी मानते हैं।

फ़ीस भरने का इंतजाम तो हालांकि हर छात्र को खुद करना होगा लेकिन बॉन्ड के पैसे भरने के लिये सरकार बैंकों से 6 प्रतिशत की दर से ब्याज पर ऋण उपलब्ध करवायेगी। इसकी अदायगी छात्र को कोर्स पूरा होने के एक साल यानी सात साल बाद से शुरू करनी होगी सात साल में पूरे कर्ज की मय ब्याज अदायगी करनी होगी। मोटे तौर पर ब्याज मिलाकर छात्रों को 55 लाख रुपये वापिस भरने होंगे। जो छात्र हरियाणा सरकार के किसी कॉलेज या अस्पताल में नौकरी पायेंगे उनके कर्ज की अदायगी हरियाणा सरकार करेगी लेकिन सरकारी नौकरी हर इच्छुक डॉक्टर को दी जायेगी इसकी गारंटी देने से सरकार ने बिल्कुल साफ़ लिखित में इसी सर्कुलर में मना कर दिया है। कुल मिलाकर बात ये है कि सरकारी नौकरी का झांसा देकर सभी कॉलेजों की फ़ीस बढाकर पूरे कोर्स के लिये 40 लाख रुपये कर दी गयी है।

इससे भी मजेदार बात ये है कि छात्र जो बैंक से लोन लेकर पैसा बॉन्ड के रूप में सरकार को जमा करायेंगे वो सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिये बनाये गये एक ट्रस्ट में जमा किये जायेंगे। इन पैसों से सरकार उन छात्रों का लोन बैंकों को वापिस चुकायेगी जो सरकारी नौकरी में लगेंगे पर बाकियों का पैसा सरकार के ट्रस्ट में ही हड़प हो जायेगा। गौरतलब है कि लोन लेने से उसकी वापिस अदायगी शुरू होने तक के बीच के सात साल पर, डॉक्टर छात्र तो बैंक को 6 प्रतिशत की दर से ब्याज भरेंगे और सरकार उस पैसे पर, अपने ट्रस्ट में जमा करवा कर, ब्याज खायेगी। इसे ही कहते हैं आम तो आम गुठलियों के भी दाम। फ़ीस तो बढाई ही बढाई, ब्याज खाया सो अलग।

गरीब रेखा से नीचे वालों या दलित छात्रों (एससी, एसटी, बोबीसी) को भी इस फ़ीस वृद्धि से छूट का कोई प्रावधान नहीं है। स्पष्ट है कि यह मेडिकल शिक्षा को अमीरों के लिये आरक्षित करने की ही एक योजना है। जहां तक सरकारी नौकरी का सवाल है तो सरकारी अस्पतालों में पहले ही कौनसा सरकार डॉक्टर लगा रही थी जो अब लगायेगी। हां उनके निजीकरण की तैयारी जरूर है। कुल मिला कर यह सारी कवायद मेडकल शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं दोनों के निजीकरण और गरीबों की पहुंच से दूर करने का प्रयास है। साथ ही सरकारी नौकरियों में आरक्षण से भी पीछा छूटेगा। आरक्षण के लिये रोज चिल्लाने वाले दलित संगठन भी अभी खामोश बैठे हैं।

इस विषय पर वामपंथी छात्र संगठनों एसएसआई और डीवाइएफआई ने ही विरोध की आवाज उठाई है। उन्होंने जगह-जगह धरने प्रदर्शन कर इस फ़ीस वृद्धि को वापिस लेने की मांग की हे और सरकार को चेतावनी दी है कि यदि फ़ीस वृद्धि वापिस नहीं ली गयी तो संघर्ष और तेज किया जायेगा। बाकि बीजेपी/संघ के छद्म छात्र संगठन एबीवीपी से तो गरीब जनता के पक्ष की कोई कार्रवाई के बारे में सोचना तो बेवकूफ़ी ही है।

-अजातशत्रु

पराली नहीं, वाहनों के धुएं और धूल से बढ़ रहा प्रदूषण

...और पटाखों का तो कहना ही क्या

फ़रीदाबाद (म.मो.) भयंकर स्तर तक बढते प्रदूषण को नियन्त्रित करने में सरकार, इसका सारा दोष किसानों द्वारा पराली जलाये जाने के सिर पर डालकर निश्चिंत हो जाती है। खुद केन्द्रीय मंत्री प्रकाश जावड़ेकर के मुताबिक पराली के धुएं से मात्र 11 प्रतिशत प्रदूषण होता है। यदि इसको और अधिक 40 प्रतिशत भी मान लें तो भी रोष 60 प्रतिशत के लिये जो दोषी हैं, उनको लेकर सरकार लफ्फाजी के सिवाय क्या कर रही है? जहां तक बात पराली जलाने की है भी तो वह अधिक से अधिक 15 से 20 दिन का मामला होता है न कि महीनों का। इसके अलावा पराली आदि का धुआं इतना घातक भी नहीं होता जितना घातक वाहनों से निकलने वाला तथा कचड़े के जलने से उत्पन्न धुआं।

इस शहर में सबसे अधिक प्रदूषण सड़कों से उड़ने वाली भवन सामग्री धूल के साथ-साथ वाहनों के धुएं से होता है। वाहनों द्वारा प्रदूषण तब और भी बढ जाता है जब सड़कों पर कब्ज़ों के चलते वाहनों की गति कम होने के साथ-साथ जाम भी लग जाते हैं। जाम में फंसी गाड़ियां खड़े-खड़े जो धुआं उगलती हैं, प्रदूषण ही तो बढाती हैं। शहर की शायद ही कोई ऐसी सड़क होगी जिसमें गड्ढे न हों। तमाम पॉश सेक्टरों में तो गड्ढों से ही काम चल जाता है एनआईटी के औद्योगिक क्षेत्र में तो सड़क ही गायब है, बिना सड़क के गड्ढों में भारी-भरकम वाहन बेतहाशा धूल उड़ाते व डगमगाते हुए रेंगने को मजबूर हैं।

स्मार्ट सिटी के नाम पर अनेकों सड़कें उखाड़ दी गयी हैं जहां से धूल के बवंडर लगातार उड़ते रहते हैं। उपायुक्त राजमार्ग प्राधिकरण को तो पानी न छिड़कने के लिये नोटिस जारी करते हैं जबकि वहां से कोई धूल नहीं उड़ती लेकिन शहर की तमाम भीतरी सड़कों पर उड़ती धूल उनको नज़र नहीं आती। पानी छिड़कने के नाम पर लाखों रुपये तो डकारे जा रहे हैं लेकिन उसका प्रभाव कहीं नज़र नहीं आ रहा। कूड़ा निस्तारण का कोई उचित प्रबन्ध न होने के चलते इसको यथासंभव चला कर ही निस्तारण कर दिया जाता है।

शायद ही कोई ऐसा सेक्टर अथवा कॉलोनी हो जहां से नियमित कूड़े का उठान होता है। कूड़ा-कबाड़ा जो रोजाना चलता है, उसकी पोल उस दिन चौड़े में खुल गयी जब नीलम पुल के चार पिलर ही उस आग ने जला मारे। लेकिन इसके बावजूद भी इस पर कोई नियंत्रण नहीं। रही-सही कसर पटाखे पूरी करने वाले हैं। हरियाणा के मुख्यमंत्री खट्टर दिवाली की रात आठ से 10 बजे तक पटाखे फ़ोड़ने की बात करते हैं तो एनजीटी बिल्कुल न फ़ोड़ने का आदेश देता है। वैसे पिछला अनुभव बताता है कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा लगाई गयी पाबंदी के बावजूद सुप्रीम कोर्ट के दरवाजे पर ही रात भर पटाखे फ़ोड़े गये थे अंध भक्तों की दिवाली पटाखों के बिना तो मन ही नहीं सकती। सांस लेने का हवा मिले न मिले पर दिवाली तो मननी ही चाहिये तभी तो भगवान प्रसन्न होंगे।

श्रम

सेठी काल में ही छिपी है एचएमएस के उत्थान और पतन की कहानी

सतीश कुमार

रंग-बिरंगे नेताओं की परिक्रमा मजदूर आंदोलन को ले डूबी

ऑल एस्कॉर्टस इम्पलाइन यूनियन के साथ-साथ एचएमएस में भी एक लम्बे समय तक सक्रिय रहे सुभाष सेठी के प्रयासों ने जिस तरह एस्कॉर्टस यूनियन सुदृढ से सुदृढतर तो बनाई। लेकिन यह सुदृढता आर्थिक एवं संसाधनों तक ही सीमित रही जबकि किसी भी संगठन को चलाने के लिये वैचारिक एवं सैद्धान्तिक सुदृढता की जरूरत अधिक होती है। सेठी ने संगठन तो शानदार खड़ा कर दिया परन्तु सैद्धान्तिक एवं वैचारिक अभाव के चलते भर-भरा कर गिरने के कागार पर पहुंच गया।

जहां तक मज़दूर वर्ग अथवा ट्रेड यूनियनों की सत्ता में भागीदारी पाने की बात है वहां तक तो सेठी की सोच ठीक रही लेकिन इसे पाने के लिये जब वे रंग-बिरंगे नेताओं की परिक्रमा करते हुए उनके जाल में फ़ंसते हैं, वह ट्रेड यूनियनवाद के लिये घातक सिद्ध हुआ। समझने की बात है कि यदि वे चौटालों की टिकट पर विधायक बन भी जाते तो मज़दूर वर्ग अथवा ट्रेड यूनियन के लिये क्या कर पाते? कुछ भी नहीं कर पाते, वे एकदम सामंती सोच वाले चौटालों के बंधुआ बन कर रह जाते। चौटालों के सामने विधायक तो क्या मंत्री तक की भी कोई औकात नहीं होती; जरूरत पड़ने पर उन्होंने कई विधायकों व मंत्रियों तक की 'डेंटिंग-पेंटिंग' अपनी तेजा खेड़ा फ़ार्म हाउस वाली 'वर्कशॉप' में कर छोड़ी है। इतना ही नहीं जॉर्ज हो या सुषमा स्वराज, ये कहां तक के मज़दूर वर्ग के साथ खड़े रह पाये, यह सब आज जमाने भर के सामने है।

उस वक्त शायद सेठी यह समझ ही नहीं पाये कि इन रंग बिरंगे नेताओं के सहारे वे ट्रेड यूनियन की दूरगामी राजनीति नहीं कर पायेंगे। समझने के लिये दूर जाने की जरूरत नहीं है, चौटालों द्वारा खड़ा किया गया लोक मज़दूर संघ क्या करता था, केवल चौटालों के इशारों पर नाच-गा कर अपना भरण-पोषण करने के साथ-साथ चौटालों की थाली में कारखानेदारों को परोसते थे। चौटालों के टिकट पर विधायक बनते तो उन्हें भी यही सब करना पड़ता या फ़िर चौटालों के हाथों प्रताड़ित होना पड़ता। लब्बो-लुआब यह कि ट्रेड यूनियन के लिये जितना काम सेठी बिना विधायक बने कर पाये, उतना विधायक बन कर न कर पाते।

हां, राजनीतिक सत्ता में ट्रेड यूनियन अथवा मज़दूर वर्ग की भागीदारी हासिल करने के लिये उन्हें अपने बूते पर सीधे राजनीति में उतरना चाहिये था। उस वक्त उनके पस जितना पड़ा मज़दूर संगठन एवं संसाधन मौजूद थे वे ज़िला भर में एक बड़ी राजनीतिक ताकत बनने के लिये पर्याप्त थे। उस ताकत के भरोसे वे ज़िले भर की तमाम विधान सभा सीटों व लोक सभा सीट पर कड़ी टक्कर दे सकते थे। लेकिन इसके लिये उन्हें अपने अनुगामियों को सियासी तौर पर तैयार करना था जो उन्होंने नहीं किया। उन्होंने अपनी इस ताकत को विभिन्न राजनेताओं की चाकरी में बर्बाद कर दिया। कभी वीपी सिंह के चुनाव में सैंकड़ों मोटर साइकिल सवारों का काफ़िला फतेहपुर जा रहा है तो कभी सुषमा स्वराज की सुरक्षा के लिये दर्जनों कार्यकर्ता नारनौल भेजे जा रहे हैं तो कभी रामबिलास पासवान को दिल्ली से रोहतक जाने के लिये टैक्सी उपलब्ध कराई जा रही है और न जाने क्या-क्या इन राजनेताओं की सेवा में, सेठी ने, मज़दूर की ताकत को खर्च किया। यदि इन नेताओं की चाकरी करने की अपेक्षा उन्होंने अपने आप को एक राजनीतिक ताकत के रूप में स्थापित किया होता तो वही सब नेता सेठी की परिक्रमा कर रहे होते। कहने की जरूरत नहीं मजबूत संगठन सभी को आकृष्ट करता है। अपने मज़दूर साथियों को एक राजनीतिक शक्ति में न पिरो सकने के कारण कोई कांग्रेस के गीत गाने लगा तो कोई बंसी लाल की विशाल हरियाणा पार्टी का टिकट पाने की लाइन में जा लगा तो कोई भाजपा का झंडा उठाये घूम रहा है। जिस संगठन में इतने दिग्भ्रमित नेता हो जायें तो उसका पतन होना तय है।

जब ट्रेड यूनियन की अपनी राजनीति विकसित करने की बजाय विभिन्न राजनीतिक दलों के चक्रव्यूह में नेतृत्व फ़ंसता है तो कुछ मज़दूर नेताओं के छोटे-मोटे व्यक्तिगत काम तो बन जाते हैं परन्तु मज़दूर वर्ग के व्यापक हित में कोई काम नहीं हो पाता। न तो किसी श्रम कानून में कोई संशोधन हो सकता है और न ही मौजूदा कानूनों को लागू कराने हेतु कारखानेदारों पर कोई दबाव डाला जा सकता है, क्योंकि राजनेताओं को उनसे मोटे-मोटे चंदे जो लेने होते हैं। इन हालात में जिस मज़दूर के हाथ भी थोड़ा सा नेतृत्व लगता है वह अपने अर्थिक हितों को बढावा देने का प्रयास करता है। उसका लक्ष्य व्यापक मज़दूर हित न रह कर, उसकी आड़ में अपना निजी हित हो जाता है। वह कम्पनी से छोटे-मोटे व्यापार करके धन कमाने की कोशिश करता है। कोई कम्पनी को माल सप्लाई करने या कराने का धंधा पकड़ता है तो कोई लेबर सप्लाई का ठेका भी छद्म नाम से लेकर उसी तरह मज़दूर का शोषण करने लगता है जैसे कोई कारखानेदार अथवा सरमायेदार करता है। और कुछ नहीं तो जीवन बीमे का व्यापार तो एक सदा बहार धंधा है ही जिसके द्वारा मज़दूरों के साथ-साथ प्रबन्धकों का भी 'कल्याण' कर दिया जाता है।

जाहिर है जब नेतृत्व इतना लाभकारी नज़र आने लगे तो उसे प्राप्त करने के लिये खर्च उठाने में भी कोई हर्ज नहीं समझा जाता। सेठी ने कुछ हद तक इस बात को समझते हुए यूनियन चुनाव के कुछ नियम बनाये थे। इनके अनुसार कोई उम्मीदवार प्रचार सामग्री-इश्तिहार आदि नहीं बांटेगा और न ही दावतें खास कर शराब आदि की, आयोजित करेगा। लेकिन ये सभी सतही उपाय खास कामयाब नहीं हो पाये।।

(सम्पादक : मजदूर मोर्चा)

अर्णब की जमानत पर विवाद

बुधवार को तुरत-फुरत और देर शाम तक सुनवाई करते हुये सुप्रीम कोर्ट ने रिपब्लिक टीवी के अर्णब गोस्वामी का जमानत दे दी। अर्णब आत्महत्या के लिये मजबूर करने के एक मामले में जेल में बंद थे। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हालांकि वो भी उनका चैनल (अर्णब का रिपब्लिक टीवी) नहीं देखते पर हम यहां आजादी की ओर संविधान की रक्षा के लिये हैं। जिनको उनकी बातें पसंद न हों वो उनका चैनल न देखें। मी लार्ड फ़िर प्रशांत भूषण जब कुछ अभिव्यक्त कर रहे थे उनकी आजादी की चिन्ता अपको क्यों नहीं हुई।

806 दिनों से जेल में बंद है यह पत्रकार, क्योंकि नाम में अर्णब नहीं है

कश्मीरी पत्रकार आसिफ सुल्तान 806 दिनों से जेल में बंद हैं। लेकिन इनकी जमानत अर्जी हर बार खारिज हो जाती है। आसिफ सुल्तान के साथ अर्णब गोस्वामी की तरह सत्तारूढ़ पार्टी का समर्थन हासिल नहीं है। यूपी के निरंकुश मुख्यमंत्री योगी का बयान साथ नहीं है। इसलिए छुट्टी में भी अदालत अर्नब की जमानत याचिका पर सुनवाई करती है और आसिफ सुल्तान को कोर्ट से सिर्फ तारीख मिलती है। आसिफ सुल्तान अपवाद नहीं हैं। तेलगू कवि वरवरा राव, एडवोकेट सुधा भारद्वाज, आदिवासी आंदोलनकारी सटेन स्वामी, दलित विचारक आनंद तेलतुम्बड़े, पत्रकार गौतम नवलखा आदि जेल में है। इन सभी की जमानत याचिकाएं खारिज हो जाती हैं। इनमें से किसी पर अर्नब गोस्वामी जैसा आरोप नहीं है।